|| श्रीहरिः ||
वसुदेवसुतं देवं कंसचाणूरमर्दनम् |
देवकीपरमानन्दं कृष्णं वन्दे जगद्गुरुम् ||

|| श्रीमद्भगवद्गीता विवेचन सारांश ||

अध्याय 18: मोक्षसंन्यासयोग

5/6 (श्लोक 40-53), शनिवार, 28 अक्टूबर 2023

विवेचक: गीता विशारद डॉ. संजय जी मालपाणी

यूट्यूब लिंक: https://youtu.be/B94DFtrkmJ0

स्वभावगत कर्त्तव्य कर्म से बने चार वर्ण

प्रभु की मङ्गल प्रार्थना, दीप प्रज्वलन व स्वामी गोविन्ददेव गिरि जी महाराज की सूक्ष्म उपस्थिति को नमन करके आज के सुन्दर विवेचन सत्र का प्रारम्भ किया गया। पिछले सत्र में अट्ठारहवें अध्याय के श्लोकों में प्रभु श्री कृष्ण ने तीन तरह के सुख- **सात्त्विक सुख, राजसिक सुख, तामसिक सुख का वर्णन किया।**

18.40

न तदस्ति पृथिव्यां(म्) वा, दिवि देवेषु वा पुनः।
सत्त्वं(म्) प्रकृतिजैर्मुक्तं(म्), यदेभिः(स्) स्यात्त्रिभिर्गुणैः॥18.40॥

पृथ्वी में या स्वर्ग में अथवा देवताओं में तथा इनके सिवाय और कहीं भी वह (ऐसी कोई) वस्तु नहीं है, जो प्रकृति से उत्पन्न इन तीनों गुणों से रहित हो।

विवेचन:- प्रभु कहते हैं कि पृथ्वी, आकाश अथवा देवताओं में या **सृष्टि में ऐसा कोई भी तत्त्व नहीं है, जो तीनों गुणों से रहित हो**। ये तीन गुण प्रकृति के अविभाज्य अङ्ग हैं। अतः इस पृथ्वी में जितने भी प्राणी या तत्त्व हैं, उनमें ये गुण सहज ही व्याप्त हैं। भगवान ने एक बार पुनः अलग-अलग वर्ण के क्या कार्य हैं? क्या विशेषताएँ हैं? इसका विवेचन किया है। श्रीकृष्ण कहते हैं कि ये चारों वर्ण मेरे ही द्वारा निर्मित हैं। प्रत्येक वर्ण की कुछ विशेषताएँ हैं, जिसके अनुसार किसी भी व्यक्ति का इन वर्णों में विभाजन तय किया जाएगा। वह निम्नलिखित प्रकार से है-

1. **गुण** - व्यक्ति के गुण अर्थात् योग्यता (क्वालिफिकेशन) क्या हैं?
2. **कर्म**- किसी व्यक्ति के कर्म अर्थात् अनुभव?

इसके अनुसार चार वर्गों में प्राणियों का विभाजन किया गया है। यह वास्तव में जन्म पर नहीं वस्तुतः कर्म पर आधारित है। यहाँ ध्यान देने योग्य बात है कि कर्म केवल वर्तमान जन्म की नहीं अपितु **गत अनेक जन्मों के कर्मफल अनुसार हमें जन्म प्राप्त होता है।** हमें यह ध्यान रखना चाहिए कि कुछ हमारे स्वयं के कर्मों से होता है और कुछ माता-पिता या पूर्वजों से प्राप्त अनुवांशिक गुण जो हमारे अन्दर आते हैं, उनके कारण। जैसे माता-पिता के गुण होते हैं वही गुण सन्तान में भी देखे जाते हैं। वही सारी प्रवृत्तियाँ उनमें भी पाई जाती हैं। पर सबसे ज्यादा यह मानव के कर्म पर आधारित होते हैं। हमारी संस्कृति में वर्ण

बदले जा सकते हैं। उदाहरण- **राजर्षि विश्वामित्र ने ब्रह्मर्षि बनने के लिए कई प्रकार की तपस्या, व्यवधानों का सामना किया और वह अपने तप से ब्रह्मर्षि बने।**

18.41, 18.42

ब्राह्मणक्षत्रियविशां(म्), शूद्राणां(ञ्) च परन्तप।
कर्माणि प्रविभक्तानि, स्वभावप्रभवैर्गुणैः॥18.41॥
शमो दमस्तपः(श्) शौचं(ङ्), क्षान्तिरार्जवमेव च।
ज्ञानंविज्ञानमास्तिक्यं(म्), ब्रह्मकर्म स्वभावजम्॥18.42॥

हे परंतप! ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्रों के कर्म स्वभाव से उत्पन्न हुए तीनों गुणों के द्वारा विभक्त किये गये हैं।
मन का निग्रह करना, इन्द्रियों को वश में करना; धर्मपालन के लिये कष्ट सहना; बाहर-भीतर से शुद्ध रहना; दूसरों के अपराध को क्षमा करना; शरीर, मन आदि में सरलता रखना; वेद, शास्त्र आदि का ज्ञान होना; यज्ञविधि को अनुभव में लाना; और परमात्मा, वेद आदि में आस्तिक भाव रखना - (ये सबके सब ब्राह्मण के स्वाभाविक कर्म हैं।

विवेचन - स्वभाव का अर्थ, वह जो हमारे भीतर बसता है। जो **हमारी सहज प्रवृत्ति है, वही हमारा स्वभाव कहलाती है।** उदाहरण- जन्म से ब्राह्मण कुल में पैदा हुए बालक में ब्राह्मण वर्ण के सभी गुण पाए जाएँ, यह आवश्यक नहीं होता। कई ब्राह्मण कुल में जन्मे बालक भी अखाद्य पदार्थ जैसे मछली आदि खाते हुए, नजर आते हैं। मदिरापान करते हुए नजर आते हैं। अतः हमारी सहज प्रवृत्ति ही वर्ण का आधार होती है।

बचपन में हमने जितनी भी कहानियाँ पढ़ीं, उनमें प्रायः हम पढ़ते थे कि एक गरीब ब्राह्मण था। इसका कारण था कि वह धर्म पालन के लिए कष्ट सहते थे व शुद्ध रहते थे। (धन अर्जन के लिए शुद्धता का परित्याग करना पड़ता है, कई असत्य कर्म करने पड़ते हैं।)

श्री कृष्ण ब्राह्मण वर्ण के मुख्य स्वभाव के बारे में बताते हुए कहते हैं कि

- क्षमाशील स्वभाव वाले।
- मन और इन्द्रियों पर नियन्त्रण रखने वाले।
- सरल।
- वेद, शास्त्र, ईश्वर और परलोक में श्रद्धा रखने वाले।
- वेद शास्त्रों का अध्यापन व अध्ययन करने वाले।
- शिक्षा देने का, अध्ययन करने का, अनुवांशिक गुण ब्राह्मणों में पाया जाता है। **परमात्मा तत्त्व को प्राप्त करना, गुरु तत्त्व को प्राप्त करना यह ब्राह्मण के स्वाभाविक कर्म हैं।**

18.43

शौर्यं(न्) तेजो धृतिर्दाक्ष्यं(म्), युद्धे चाप्यपलायनम्।
दानमीश्वरभावश्च, क्षात्रं(ङ्) कर्म स्वभावजम्॥18.43॥

शूरवीरता, तेज, धैर्य, प्रजा के संचालन आदि की विशेष चतुरता, युद्ध में कभी पीठ न दिखाना, दान करना और शासन करने का भाव - (ये सबके सब) क्षत्रिय के स्वाभाविक कर्म है

विवेचन- क्षत्रिय वर्ण- स्वामित्व का भाव अर्थात मैं मालिक हूँ। यह भाव क्षत्रिय धर्म में पुष्ट किया जाता है। इसीलिए राजा बनने का अधिकार क्षत्रियों के पास होता है। इसके साथ क्षत्रिय के अन्य गुण हैं-

- अपने देश को आगे बढ़ाने का।

- रक्षा करने का।
- अपनी प्रजा को आक्रमण से बचाने का शौर्य व धैर्य होना चाहिए।
- उसे तेजस्वी होना चाहिए।
- उसे चातुर्य से भरा हुआ होना चाहिए।
- उसमें बिल्कुल भी भय नहीं होना चाहिए।

यहाँ श्रीकृष्ण अर्जुन को क्षत्रिय धर्म याद दिला रहे हैं। महाभारत के युद्ध में अपने प्रियजन को खोने के भय से, अर्जुन भी युद्ध छोड़कर चले जाने की बात कर रहे थे। अपने प्रियजन को खोकर, प्राप्त हुआ राज्य भोग किस काम का? इस भाव के कारण युद्ध भूमि छोड़कर चला जाने के भाव अर्जुन के मन में भी जागृत हो गए थे। परन्तु श्री कृष्ण ने उन्हें कहा कि हे भरत! भागो नहीं, जागो!

भागो नहीं, जागो! यह गीता का मूल मन्त्र है, जिससे श्री कृष्ण ने अपने प्रिय मित्र के पराक्रम को जगाया।

यहाँ ध्यान देने योग्य बात यह है कि यदि अर्जुन की जगह श्रीमद्भागवद्गीता का ज्ञान प्रभु किसी ब्राह्मण को दे रहे होते, तब वह ध्यान पर, ज्ञान की बात पर अधिक बल देते। उन्हें समझाते कि हिंसा करना तुम्हारा कार्य नहीं है क्योंकि तुम अहिंसक हो। परन्तु यदि जन्म से ब्राह्मण कुल में पैदा होकर कोई युद्ध क्षेत्र में खड़ा होता है, तब वह भी क्षत्रिय कहलाता है। इसलिए प्रभु यहाँ पर स्वभावगत कर्म को ही अधिक महत्त्व दे रहे हैं।

प्रत्युत अर्जुन को भगवान ने पराक्रम का ज्ञान दिया, युद्ध अर्जुन के लिए किस प्रकार श्रेष्ठ है? यह बताया। **धर्म के लिए युद्ध करने में किसी तरह का पाप नहीं होता**, यह समझाया। इसके साथ-साथ प्रभु ने यह भी बताया कि जो भी क्षत्रिय अर्जित करता है, उसे दान करना भी क्षत्रिय का स्वभावगत कर्म है।

18.44

कृषिगौरक्ष्यवाणिज्यं(म्), वैश्यकर्म स्वभावजम्।
परिचर्यात्मकं(ङ्) कर्म, शूद्रस्यापि स्वभावजम्॥18.44॥

खेती करना, गायों की रक्षा करना और व्यापार करना - (ये सबके सब) वैश्य के स्वाभाविक कर्म हैं (तथा) चारों वर्णों की सेवा करना शूद्र का भी स्वाभाविक कर्म है।

विवेचन- वैश्य वर्ण- खेती, व्यापार आदि करना एक वैश्य का स्वभावगत कर्म है।

शूद्र वर्ण- का स्वभावगत कर्म है, सभी की सेवा करना- सुश्रूषा करना। यही कारण है कि हमारी भारतीय संस्कृति में श्री वीर सावरकरजी ने नर्स को परिचारिका कहा (वह जो सेवा कर के रोगी को स्वस्थ करती हैं।) रोगी के मलीन अंगों को स्वच्छ करे, यह सेवा का भाव जिसमें आए वह शूद्र है। यहाँ पर चारों वर्णों को सम्मान दिया गया है। केवल उनके स्वभावगत कर्मों के अनुसार विभाजन किया गया है।

वर्तमान में भी यही प्रणाली उपयोग में आती है क्लास वन अधिकारी, क्लास टू अधिकारी, क्लास तृतीय और क्लास चतुर्थ। सभी अपने-अपने नियत कार्यों को करते हैं। चतुर्थ वर्ग का कर्मचारी किसी भी परिपत्र पर हस्ताक्षर नहीं कर सकता क्योंकि उसके पास हस्ताक्षर करने का अधिकार नहीं है। सबके अपने-अपने अधिकार हैं और उसके अधिकार अनुसार ही वह कर्म करते हैं, नियमों का पालन करते हैं। जो जिस विभाग का अधिकारी है, वह अधिकार अनुसार ही परिपत्र पर हस्ताक्षर कर सकता है। हर व्यक्ति की विशेषता होती है, हर पद की विशेषता होती है और यदि इन नियमों का पालन न किया जाए तो व्यक्ति अपने कर्म से भटक जाता है। जैसे सेना पर तैनात सेनानी का कर्म है, सीमा की रक्षा करना। वह अपने कार्य से न भटके यह अत्यावश्यक है। वहीं अन्य उच्च विभाग का अधिकारी सीमा पर जाकर, सैनिक का कार्य नहीं कर सकता क्योंकि उसने उस तरह की शिक्षा प्राप्त नहीं की है, न उसे ऐसा करने का अधिकार है, न ही उसके पास हथियार रखने का कोई लाइसेंस है या अधिकार है। वर्तमान में क्षत्रिय बनने का अधिकार सेना व पुलिस कर्मचारियों को दिया गया है।

इसी प्रकार समाज की सेवा करने का भाव जिस वर्ण में है वह शूद्र वर्ण है। ईश्वर ने यहाँ हमें एक चेकलिस्ट दी है कि हम अपने स्वभावगत कर्म के अनुसार यह पहचानें कि मैं कौन हूँ?

यदि राजनेता के घर में जन्मा बालक, उस कार्य के लिए विशेषताएँ नहीं रखता, तब वह प्रयास करने पर भी, अच्छा राजनेता नहीं बन सकता है। वर्तमान समय में यदि किसी परिवार में एक बालक स्वभावगत बहुत ही अच्छा चित्रकार है परन्तु पड़ोसी के बालक से प्रतिस्पर्धा करते हुए, जिसने इंजीनियर या आईआईटी की परीक्षा उत्तीर्ण की है, वह बालक जो एक सुप्रसिद्ध चित्रकार बन सकता है, वह भी आईआईटी की परीक्षा उत्तीर्ण करे, जबकि उसे गणित, भौतिक शास्त्र, रसायन शास्त्र जैसे विषय बिल्कुल अच्छे नहीं लगते। तब वह अच्छा चित्रकार नहीं बन पाता है और अच्छा इंजीनियर तो वह बन ही नहीं सकता। उस बालक पर माता-पिता की अधूरी अपेक्षाएँ थोपी जाती हैं। इसी प्रकार एक सुमधुर गायक के गुण लिए बालक को यदि वकील बनने के लिए बाध्य कर दिया जाता है, तब न तो वह अच्छा वकील बन पाता है और न ही अच्छा गायक। इसलिए भगवान बार-बार स्वभाव को महत्व दे रहे हैं। अपने स्वाभाविक कर्मों को देखो। अतः माता-पिता की जिम्मेदारी है कि बच्चों के स्वभाव अनुसार उसी दिशा में बालक/ बालिका को आगे बढ़ने के लिए प्रोत्साहित करें। ज्यादातर अनुवांशिक गुण के अनुसार ही बच्चा अपने स्वभाव को प्राप्त करता है। जैसे गायक माता-पिता का आत्मज एक अच्छा गायक ही बनता है। परन्तु उसके अभाव में बच्चे का स्वभाव देखकर ही उसके भविष्य या करियर का चयन करें।

18.45, 18.46

स्वे स्वे कर्मण्यभिरतः(स्), संसिद्धिं(म्) लभते नरः।
स्वकर्मनिरतः(स्) सिद्धिं(म्), यथा विन्दति तच्छृणु॥18.45॥
यतः(फ्) प्रवृत्तिर्भूतानां(म्), येन सर्वमिदं(न्) ततम्।
स्वकर्मणा तमभ्यर्च्य, सिद्धिं(म्) विन्दति मानवः॥18.46॥

अपने-अपने कर्म में प्रीतिपूर्वक लगा हुआ मनुष्य सम्यक् सिद्धि (परमात्मा)को प्राप्त कर लेता है। अपने कर्म में लगा हुआ मनुष्य जिस प्रकार सिद्धि को प्राप्त होता है? उस प्रकार को (तू मुझसे) सुन।
जिस परमात्मा से सम्पूर्ण प्राणियों की प्रवृत्ति (उत्पत्ति) होती है (और) जिससे यह सम्पूर्ण संसार व्याप्त है, उस परमात्मा का अपने कर्म के द्वारा पूजन करके मनुष्य सिद्धि को प्राप्त हो जाता है।

विवेचन - जो कुशलता से अपना कार्य करता है, वह योगी कहलाता है। अपने स्वभाव को पहचान कर कर्म करने वाले व्यक्ति को समाधि प्राप्त होती है। अपने कार्य में कुशलता प्राप्त करके वास्तव में वह ईश्वर के अधिक समीप चला जाता है क्योंकि हर कार्य को कुशलता से करते समय उसकी समाधि लगने लगती है। अतः हर्षित होकर वह शान्त चित्त से अपने कार्य को करता जाता है। उदाहरण- एक चित्रकार यदि बहुत अच्छा चित्र बनाता है तो स्वाभाविक रूप से उस चित्र को बनाते समय अपनी सुध-बुध खोकर समाधि में लीन हो जाता है। वहीं एक गायक अपने स्वभाव अनुरूप जब गाना गाने लगता है तब उसकी समाधि गाने में लगती है। एक नर्तिका जब पूर्ण मग्न हो नृत्य करने लगती है तब वह भी समाधि में लीन हो जाती है। जैसे कि मीरा जी की समाधि लगी-

ऐसी लागी लगन, मीरा हो गई मगन।

जीवन में किस प्रकार यशस्वी बना जा सकता है? इसके सूत्र बताते हुए प्रभु कहते हैं- जब एक वक्ता अपने मनोहरी व्याख्यान के द्वारा सभी श्रोताओं को अपनी ओर खींच लेता है, वह भी समाधि लीन कहलाता है। एक गायक मधुर गीत धनोपार्जन के लिए गाता है, तब वह उससे धन अर्जित कर सकता है, परन्तु यदि वह भजन भगवत् प्राप्ति हेतु गया जाता है, तब वह भगवान के और निकट हो जाता है। वह मीरा जी के समान भगवत्लीन हो जाता है। यदि एक भक्त अपनी रचना भगवान को समर्पित कर देता है तब वह तुलसी दास जी बन जाते है। एक क्षण ऐसा भी आता है, जब उन्हें आते जाते हर व्यक्ति में प्रभु राम के दर्शन होने लगते हैं। ऐसा प्रतीत होता है कि वह स्वयं भगवान को चन्दन का टीका लगा रहे हैं। एक गुरु अपने पास आने वाले हर शिष्य को बालकृष्ण का स्वरूप मान लेता है और अपने हर कर्म द्वारा श्री बालकृष्ण का पूजन करना चाहता है। जब यह भाव उसके मन में रहता है, उस शिक्षक गुरु को भी सिद्धि प्राप्त होती है। ऐसे शिक्षक अत्यन्त आदरणीय बन जाते हैं। समाज उनके सामने नतमस्तक हो जाता है। एक सिद्ध सन्त राजा से भी उच्च पदवी को प्राप्त हो जाता है। तभी हमारे देश में सन्तों को महाराज कहा जाता है। राजा अर्थात् पृथ्वी पर राज करने वाले महाराज अर्थात् जो मन पर राज करते हैं। यही कारण है कि श्री छत्रपति शिवाजी महाराज कहलाते हैं। **समर्थ श्रीरामदास स्वामी जी ने वीर शिवाजी को महाराज कहकर बुलाया- वह जो**

लोगों को जानता है इसलिए यह महाराज क्योंकि वह मन पर राज करते हैं। एक अच्छा शिक्षक अपने बच्चों पर दृष्टि डालते ही पहचान जाता है कि उनके मनोभाव कैसे हैं? एक उदास बालक की पीठ जब वह सहलाता है तब वास्तव में वह उसके मन को छूता है और बालक अपने मन की बात शिक्षक से कह देता है। हमारे स्वाभाविक कर्म ही पूजा बन जाने चाहिए यह सर्वश्रेष्ठ पूजा कहलाती है। भगवान आदिशङ्कराचार्य जी मानस पूजा करते थे। भगवान महादेव की आराधना करते हुए कहते थे कि भगवान अब आपके सामने बैठने का कार्य पूरा हुआ। अब मैं अपने कार्यों को करता हूँ परन्तु अपने कार्यों में लगकर भी मैं आपका ही पूजन करता रहूँ। जैसे कि मेरा चलना, आपकी प्रदक्षिणा बन जाए। मेरे सारे शब्द आपके स्तोत्र बन जाए। मेरी नींद आपकी समाधि बन जाए। मैं जो भी कर्म करूँ, वह आपकी आराधना बन जाए। कितनी सुन्दर व महान आत्मा का परिचायक है यह विचार।

अतः हमें अपने स्वभावगत कर्म को लगन के साथ करना चाहिए। किसी की देखा-देखी यदि हम किसी कार्य को करते हैं तब उसमें सिद्धि प्राप्त होना असम्भव होता है। यदि पड़ोसी का बच्चा इंजीनियर या डॉक्टर बन रहा है तो मैं भी अपने बच्चों को डॉक्टर या इंजीनियर बना लूँ यह सोच उचित नहीं है। तब वह कभी भी अच्छा डॉक्टर या इंजीनियर नहीं बन सकेगा, यह तय है। जबरदस्ती का कार्य कभी भी सही नहीं होता। एक दुकानदार यदि चाहे कि मैं सरहद पर जाकर दुश्मन का सामना करूँ! वह अनुभव के अभाव में यह नहीं कर पाएगा वह मर जाएगा। परन्तु यदि वह अच्छा व्यापार करेगा व व्यापार से प्राप्त धन से अपने कर समय पर चुकाएगा तब उसके द्वारा चुकाया गया यह कर, सेना के लिए अमूल्य योगदान देगा। भारत में एक समय था, जब हम मोबाइल बाहर से आयात करते थे। आज वर्तमान में भारत "**make in India"** के माध्यम से वर्तमान में भारत नम्बर दो का निर्यातक बन गया है। सड़कें, हाईवे सभी में अत्यधिक विकास हुआ है। ऐसा इसलिए हुआ है क्योंकि हमने देखा देखी कार्य नहीं किया है, अपना स्वभागत कार्य किया है।

18.47

श्रेयान्स्वधर्मो विगुणः(फ्), परधर्मात्स्वनुष्ठितात्।
स्वभावनियतं(ङ्) कर्म, कुर्वन्नाप्नोति किल्बिषम्॥18.47॥

अच्छी तरह अनुष्ठान किये हुए परधर्म से गुणरहित (भी) अपना धर्म श्रेष्ठ है। (कारण कि) स्वभाव से नियत किये हुए स्वधर्मरूप कर्म को करता हुआ (मनुष्य) पाप को प्राप्त नहीं होता।

विवेचन - श्रीमद्भगवद्गीता में धर्म का एकमात्र अर्थ है- कर्त्तव्य। अपने कर्त्तव्य को निष्ठा पूर्वक निभाना। श्रीमद्भगवद्गीता गीता पाँच हजार वर्षों पूर्व कही गई। उस समय मनुष्य का कर्त्तव्य ही उसका धर्म माना जाता था। अन्य धर्म जैसे ईसाई धर्म, मुस्लिम धर्म, यहूदी धर्म सहस्त्रों वर्ष बाद बनाए गए। हमारे आदि, अनन्त सनातन संस्कृति में हमारे स्वभावगत कर्म को ही अत्यन्त आवश्यक माना गया है। कर्त्तव्य को निष्ठा पूर्वक करना ही मानव का धर्म माना जाता है।

श्रीमद्भगवद्गीता धर्म की परिभाषा कहती है।

धृतराष्ट्र द्वारा कहा गया गीता जी के प्रथम श्लोक का प्रथम वर्ण धर्म क्षेत्रे को समझना अति आवश्यक है। हमारा जीवन भी एक धर्म क्षेत्र है। प्रतिदिन हमारे जीवन में कई प्रकार की दुविधाजनक परिस्थितियाँ आती रहती हैं। इसके कारण मन व बुद्धि में परस्पर मतभेद आते रहते हैं। उसे समझना, उसे जानना ही अति महत्वपूर्ण है। दिव्य दृष्टि प्राप्त सञ्जय द्वारा कहे गए गीता जी के अन्तिम श्लोक का अन्तिम शब्द था ममः। गीता जी का पहला वर्ण 'ध' व अंतिम वर्णन 'म' से निर्मित वह शब्द धर्म इसलिए ईश्वर यहाँ कहते हैं कि धर्म युक्त कर्म को करता हुआ मनुष्य पाप अर्थात किल्बिषम् को प्राप्त नहीं होता। श्रीकृष्ण अर्जुन को कहते हैं कि धर्म की रक्षा के लिए अपने कर्त्तव्य कर्म को करते हुए युद्ध करो। हे पार्थ! इस युद्ध में यदि लोग आहत भी होंगे तब कर्त्तव्य कर्म के भाव से किया गया कर्म पाप नहीं देगा। एक क्षत्रिय का धर्म है कि वह अपने देश के लोगों की रक्षा करे। आततायियों से प्रजा को बचाए। उन्हें देह दण्ड की सजा क्षत्रियगत कर्म है। प्रभु कहते हैं कि स्वभावगत कर्म करना अति आवश्यक है। यदि एक वैश्य क्षत्रिय का और क्षत्रिय वैश्य का कर्म करना चाहे तो वह निष्ठा या मन के साथ उसे नहीं कर सकता क्योंकि यह उसके स्वभाव अनुरूप नहीं है।

स्वभाव शब्द के भी दो अर्थ निकलते हैं- एक जो हमारे भीतर के या अन्दर का भाव अर्थात् स्वभाव। एक अन्य अर्थ है स्वभाव या सहज भाव अर्थात् जो जन्म से प्राप्त है। हमारे अनुवांशिक गुण से जो सहज विशेष योग्यताएँ प्राप्त हैं, स्वभाव निर्माण में मुख्य भूमिका

निभाती हैं। परन्तु हर जगह यह कथन सत्य हो, यह जरूरी नहीं। जैसे एक कुशल नेता का पुत्र भी कुशल नेता बने, यह आवश्यक नहीं। आने वाले समय में हमें सोच समझकर अपने नेता का चयन करना होगा। यह हमारे देश के लिए अति आवश्यक है। एक छोटा सा बालक भी अपनी माँ को स्पर्श के माध्यम से पहचान जाता है। श्रीकृष्ण ने भी सुन्दर स्त्री के रूप में पूतना को पहचान लिया। वहीं हर माँ अपने बालक का स्पर्श पहचानती है। ऐसे प्रयोग किए गए कि बाहर तेज बिजली कड़कने पर भी मन विचलित नहीं हुआ। गहरी नींद से नहीं उठी या जागी परन्तु बालक के करवट बदलते ही माँ जाग जाती है। यह माँ का स्वभाव है। अपने स्वभाव के विपरीत कार्य करना सदैव अहितकारी रहता है। जैसे एक मछली चाहे कि मैं जल की जगह एक उत्तम, उत्कृष्ट घी के अंदर तैरूँगी तो वह सम्भव है? वह ऐसा नहीं कर सकती और यदि प्रयास भी करेगी तो मृत्यु को प्राप्त होगी। गंदगी में पनपने वाले कीड़े को यदि गुड़ के डले पर रख दिया जाए तब वह जीवित नहीं रह पाएगा अर्थात् अपने स्वभाव अनुरूप कार्य छोड़कर दूसरे कार्य करने में श्रेष्ठता प्राप्त नहीं होती है।

18.48

सहजं(ङ्) कर्म कौन्तेय, सदोषमपि न त्यजेत्।
सर्वारम्भा हि दोषेण, धूमेनाग्निरिवावृताः॥18.48॥

हे कुन्तीनन्दन ! दोषयुक्त होने पर भी सहज कर्म का त्याग नहीं करना चाहिये; क्योंकि सम्पूर्ण कर्म धुएँ से अग्नि की तरह (किसी न किसी) दोष से युक्त हैं।

विवेचन - प्रभु कहते हैं कि हे कौन्तेय! दोष युक्त भी हो तब भी सहज या स्वभागत कर्म ही सही है। उसे त्यागना नहीं चाहिए। उदाहरण के लिए अग्नि को सर्वोत्तम पवित्र माना जाता है। चारों वेदों का गुणगान पवित्र अग्नि का प्रज्वलन करके किया जाता है। परन्तु उसमें भी काले धुएँ का दोष होता है क्योंकि जिस लकड़ी को जलाकर अग्नि उत्पन्न की जाती है उसके अन्दर कण मात्र जल भी यदि शेष रहता है तो धुँआ निकलता है। यह एक दोष की भाँति उसके साथ रहता है। देखा जाए तो हर कार्य में कुछ न कुछ दोष व्याप्त है। खाना बनाते समय जब हम चूल्हा जलाते हैं, तब आसपास के कई कीट-पतङ्ग इस क्रिया में जल जाते हैं। जब हम पानी उबालते हैं तब पानी को स्वच्छ करते समय पानी के जीवाणू मर जाते हैं। वस्त्रों को धोते समय, कृषि करते समय अर्थात् हर कार्य में कुछ न कुछ सूक्ष्मजीव आहत होते हैं। सबसे पवित्र माने जाने वाले व्यवसाय दुग्ध व्यवसाय में देखें तो वास्तव में यह दूध बछड़े के लिए होता है, जिसे हम अपने घर ले आते हैं। बछड़े का दूध घर पर लाना और उसे बेचना भी दोष है। यही कारण है कि भारतवर्ष में दुग्ध बेचा नहीं जाता था। अतिरिक्त दुग्ध आसपास के घरों में बाँट दिया जाता था। हमारी संस्कृति में दूध व ज्ञान कभी बेचा नहीं जाता था। गुरु-शिष्य को शिक्षा का दान करते थे। गुरुकुल के अन्तिम दिवस शिष्य इच्छानुसार गुरु दक्षिणा दिया करते थे। परन्तु गुरु द्रोण को किसी कारण (जब अपने पुत्र अश्वत्थामा को दुग्ध पिलाने योग्य धन भी उनके पास नहीं था व आटे में पानी घोलकर पिलाने की स्थिति आ गई) भीष्म पितामह के पास सवैतनिक गुरु बनना पड़ा। यहीं पर उनका पतन हो गया। युद्ध भूमि में जब अपने प्रियजन के रक्त मेरे हाथ रङ्गे जाएँगे! जब यह भाव अर्जुन के मन में आया कि प्रियजन का वध करके मैं राज्य का भोग करूँ! यह अनुचित है। इस भाव से वे विचलित हो गए। वास्तव में अर्जुन कई बार कौरवों को हरा चुके थे। (जैसे कि विराट नगरी के युद्ध में सभी कौरवों, कर्ण, भीष्म पितामह को अपने मोहिनी अस्त्र के प्रयोग से सबको मूर्छित कर दिया।)

इस दुविधा को दूर करने के लिए अर्जुन को उनके परम मित्र श्रीकृष्ण कह रहे हैं कि जहाँ गुण है, वहाँ दोष होना तय है। दोनों एक ही सिक्के के दो पहलू हैं। जब हम गुणातीत हो जाएँगे तब दोषातीत भी हो जाएँगे। अतः हे अर्जुन! युद्ध करने में या आततायी का वध करने में कोई दोष नहीं है।

अपनी प्रिय सखा अर्जुन के माध्यम से यह बात श्री कृष्ण हम सभी को बता रहे हैं कि स्वभावगत कर्मों में दोष का भाव नहीं रहना चाहिए। उदाहरण एक चिकित्सक बालक को इंजेक्शन लगता है, तब बालक बहुत रोता है। यदि चिकित्सक करुणा से भरकर उसे वह इंजेक्शन न लगाए तो यह गलत कार्य होगा। परन्तु चिकित्सक जानता है कि बालक को यह इंजेक्शन कई रोगों से लड़ने की शक्ति प्रदान करेगा उसे कई रोगों से बचाएगा अतः इंजेक्शन लगाना अनिवार्य है और वह अपने कर्म को करेगा।

18.49

असक्तबुद्धिः(स्) सर्वत्र, जितात्मा विगतस्पृहः।
नैष्कर्म्यसिद्धिं(म्) परमां(म्), सन्न्यासेनाधिगच्छति॥18.49॥

जिसकी बुद्धि सब जगह आसक्तिरहित है, जिसने शरीर को वश में कर रखा है, जो स्पृहारहित है (वह मनुष्य) सांख्ययोग के द्वारा सर्वश्रेष्ठ नैष्कर्म्य-सिद्धि को प्राप्त हो जाता है।

विवेचन - प्रभु कहते हैं कि वे व्यक्ति जो लोभ, मोह से रहित, आकाङ्क्षाओं से रहित, अपने मन और इन्द्रियों को जीतने वाले हैं, वे कार्य करते हैं परन्तु उस कार्य से निर्लिप्त होते हैं, ऐसे साधक परम सिद्धि को प्राप्त होते हैं। अन्यथा वह नर्क में जाते है। नैष्कर्म्य सिद्धि का अर्थ यहाँ कर्म छुटकारा नहीं है अपितु उसको अकर्म बनाना। आलसी नहीं बनें, अपितु कर्म से निर्लिप्त रहें। कर्म को योग बनाएँ।

उदाहरण किसी एक व्यक्ति को यह सपना आता है कि वह पानी में डूब कर मर रहा है। जब उसकी निद्रा टूटती है तो वह देखता है कि वह पसीने से भीगा हुआ है, वह सपना देख रहा था। उसकी हृदय गति तीव्र हो चुकी है उसका विवेक जागृत होता है, वह सम्भल कर वास्तविक जगत में वापस आ जाता है। ठीक वैसे ही जब ज्ञान की अनुभूति हो जाती है, अपने मन के चक्षु को खोलने की, अपने विवेक को जगाने की आवश्यकता पड़ती है। यही क्रिया है जहाँ पर सिद्धार्थ बुद्ध बन जाते हैं। महावीर, भगवान महावीर बन जाते हैं। मीरा सन्त कहलाई जाती हैं। यह वह एक क्षण है जब गङ्गा, सागर में मिलकर गङ्गासागर बन जाती है। जब गीता जी हमारे जीवन में शामिल हो जाएँगी। हमारे दैनिक जीवन का हर कार्य भी समाधि बन जाए, यह भाव जागृत हो जाए। तब सं ंसिद्धि को प्राप्त करना सहज हो जाएगा। जब यह भाव जागृत हो जाएगा कि मेरे सहज कर्म के द्वारा मैं ईश्वर की सेवा कर रहा हूँ तो वह कर्म भी समाधि को प्राप्ति होता है।

18.50

सिद्धिं(म्) प्राप्तो यथा ब्रह्म, तथाप्नोति निबोध मे।
समासेनैव कौन्तेय, निष्ठा ज्ञानस्य या परा॥18.50॥

हे कौन्तेय ! सिद्धि (अन्तःकरण की शुद्धि) को प्राप्त हुआ साधक ब्रह्म को, जो कि ज्ञान की परा निष्ठा है, जिस प्रकार से प्राप्त होता है, उस प्रकार को (तुम) मुझसे संक्षेप में ही समझो।

विवेचन - भगवान कहते हैं कि हे अर्जुन! अन्तःकरण की शुद्धि के बाद किस प्रकार ज्ञान के माध्यम से सिद्धि प्राप्त होती है यह तो मुझसे सुनो।

18.51, 18.52, 18.53

बुद्ध्या विशुद्धया युक्तो, धृत्यात्मानं(न्) नियम्य च।
शब्दादीन्विषयांस्त्यक्त्वा, रागद्वेषौ व्युदस्य च॥18.51॥
विविक्तसेवी लघ्वाशी, यतवाक्कायमानसः।
ध्यानयोगपरो नित्यं(म्), वैराग्यं(म्) समुपाश्रितः॥18.52॥
अहङ्कारं(म्) बलं(न्) दर्पं(ङ्), कामं(ङ्) क्रोधं(म्) परिग्रहम्।
विमुच्य निर्ममः(श्) शान्तो, ब्रह्मभूयाय कल्पते॥18.53॥

(जो) विशुद्ध (सात्त्विकी) बुद्धि से युक्त, वैराग्य के आश्रित, एकान्त का सेवन करने वाला (और) नियमित भोजन करने वाला (साधक) धैर्यपूर्वक इन्द्रियों का नियमन करके, शरीर, वाणी, मन को वश में करके, शब्दादि विषयों का त्याग करके और राग-द्वेष को छोड़कर निरन्तर ध्यानयोग के परायण हो जाता है, (वह) अहंकार, बल, दर्प, काम, क्रोध और परिग्रह से रहित होकर (एवं) ममता रहित तथा शान्त होकर ब्रह्मप्राप्ति का पात्र हो जाता है। (18.51-18.53)

विवेचन - ये श्लोक वास्तव में भगवद्गीता जी का निचोड़ हैं। उसमें सबसे पहले है - नियमित भोजन कैसा होना चाहिए। इस

बारे में प्रभु श्री कृष्ण बताते हैं कि **युक्ताहार अर्थात् जितना आवश्यक हो उतना ही ग्रहण करना**। हल्का सात्विक भोजन करना चाहिए।

मुँह से जो शब्द निकले उन पर ध्यान देना चाहिए। हमारे शरीर से जितनी भी वस्तुएँ बााहर निकलती हैं- जैसे पसीना, खारे अश्रु, कान की मैल, मल-मूत्र, यह सब दुर्गन्ध युक्त मैल हैं। केवल शब्दों का चयन करके हम उसे मधुर या कटु बना सकते हैं। अतः एकमात्र बाहर निकलने वाले शब्द सुगन्धित हो सकते हैं। पुष्प जैसे सुगन्धित शब्द बोलने चाहिए। मृदभाषी बनें। (वाङ्गमय का तप) हमें ऐसे वाक्य बोलने चाहिए, जो किसी के मन में उद्वेग उत्पन्न न करें। अतः मीठे शब्द बोलें। हमारी पाँचों इन्द्रियाँ बाह्य तत्वों से प्रभावित होती हैं। मन करता है, कुछ चटपटा गलत खाने को। कान गलत चीज सुनने के लिए लालायित रहते हैं। इससे बचना बेहद जरूरी है। मुख्यतः उन चीजों से से बचना बेहद जरूरी है, जो हमें गलत राह पर ले जाती हैं। मन और इन्द्रियों पर नियन्त्रण करने वाला, राग द्वेष को सर्वथा नष्ट करने वाला, भली-भाँति दृढ़ वैरागी व्यक्ति है। अहङ्कार और घमण्ड पर नियन्त्रण करने वाला, काम, क्रोध, परिग्रह अर्थात् अपने मन के सभी वैरियों से दूर रहने वाला। इन सब का त्याग करने के उपरान्त ध्यान योग में स्थिर रहने वाला व्यक्ति, ध्यान योग, यम नियम, प्राणायाम, प्रत्याहार धारणा इन सबको साथ लेकर योग में स्थित ममता रहित पुरुष सच्चिदानन्द ईश्वर में स्थित हो जाता है। श्री कृष्ण कहते हैं -

- **विशुद्ध बुद्धि युक्त**
- **हल्का नियमित सात्विक भोजन करने वाला।**
- **शब्द आदि विषयों का त्याग करने वाला।**
- **इन्द्रियों का संयम करने के लिए सात्विक धारणाशक्ति को धारण करने वाला।**
- **अन्तरङ्ग व इन्द्रियों पर संयम करने वाला।**
- **मन वाणी व शरीर को वश में करने वाला।**
- **राग, द्वेष को पूर्ण रुप से नष्ट करने वाला।**
- **अहङ्कार, घमण्ड, काम, क्रोध और परिग्रह का त्याग करने वाला।**
- **व निरन्तर ध्यान योग में परायण रहने वाला।**
- **ममता रहित व शान्ति युक्त पुरुष सच्चिदानन्द में अभिन्न भाव से स्थित होता है। प्रभु ने इन तीन श्लोक में गागर में सागर भर के सम्पूर्ण श्रीमद्भगवद्गीता का सार हमें बता दिया।**

: : प्रश्नोत्तर : :

प्रश्नकर्ता :- डॉ शशि ठाकुर दीदी

प्रश्न :- मुस्लिम समुदाय में निडर बनने और युद्ध से पलायन न करने को कहा गया है किन्तु उनका स्वभाव आसुरी है। जबकि हम अपने बच्चों को डराते हैं कि यह नहीं करना, वहाँ नहीं जाना आदि। हम यह जानते हैं कि निडर होना भी कई जगह आवश्यक होता है। इसे कृपया स्पष्ट कीजिए।

उत्तर :- जो छब्बीस गुण सम्पदा बताई हैं उनमें शरीर बल को प्राप्त करना और अभय को बताया गया है।

अभयं सत्त्वसंशुद्धिः ज्ञानयोगव्यवस्थितिः।
दानं दमश्च यज्ञश्च स्वाध्यायस्तप आर्जवम्।।16.1।।

हमें अपने बच्चों को निडर बनाना चाहिए किन्तु समस्या यह हो गई कि हमारे यहाँ एक दो पर हम रुक जाते हैं। वहाँ पर चौदह-पन्द्रह बच्चे हो रहे हैं। यह बात अभी सभी को समझ में नहीं आ रही है। किन्तु एक दिन आएगी। हम डरते हैं इसलिए हम अपने बच्चों को भी डरपोक बना रहे हैं। उस विशेष समुदाय के लोग इस प्रकार से ईश्वर को प्राप्त कर लेंगे यह सही बात नहीं है। वह इसे समझ ही नहीं रहे हैं। वह अपने धर्म ग्रन्थ में जो बात की गई है, उसे ठीक से नहीं समझ पा रहे हैं। जिस प्रकार हमास नामक आतंकी सङ्गठन में इजराइल के दो सौ नागरिकों को बंधक बनाया जिसमें बच्चे, वृद्ध और औरतें हैं और उनको जिस प्रकार बर्बरता पूर्वक काट **दिया गया, यह उनका धर्म उन्हें नहीं सिखाता है। वह उसका गलत मतलब ही समझ रहे**

हैं।

प्रश्नकर्ता :- हनुमान प्रसाद बागड़िया भैया

प्रश्न :- नैष्कर्म्य से सिद्धि कैसे प्राप्त हो सकती है?

उत्तर :- कर्म के फल की आकांक्षा को छोड़कर अथवा त्याग कर किया गया कर्म नैष्कर्म्य कर्म कहलाता है। फलाकांक्षा को त्याग कर जब कोई कर्म करने लगता है तो उसे सिद्धि प्राप्त होती है। यदि कोई व्यक्ति पाँच कार्य करता है और उनमें से कोई दो कार्य भी वह बिना फल की इच्छा के करता है तो वह कर्म भी उसके नैष्कर्म्य कर्म बन जाते हैं और कालान्तर में वह उसे सिद्धि दिलाते हैं। "सर्व भूत हिते रता:" सभी भूत मात्राओं के निमित्त कार्य किया जाता है।

प्रसादे सर्वदुःखानां हानिरस्योपजायते।
प्रसन्नचेतसो ह्याशु बुद्धिः पर्यवतिष्ठते।।2.65।।

अर्थात् भगवान ने बार-बार कहा है कि यदि आप सभी प्रकार के दु:खों की हानि करना चाहते हैं तो आपका मन प्रसन्न होना चाहिए। मन तब प्रसन्न होगा जब हम किसी के लिए कोई कार्य बिना कोई फलाकांक्षा के करेंगे।

प्रश्नकर्ता :- मंजू दीदी

प्रश्न :- हमारी वाणी सदा किस प्रकार अच्छा ही बोल सकती है क्योंकि हमारे आसपास सभी लोग इतना कड़वा बोलते हैं?

उत्तर :- किसी विशेष स्थान पर या प्राकृतिक स्थान पर जाकर ही हम मधुर वाणी बोल सकें, ऐसा नहीं होना चाहिए। होना तो यह चाहिए कि हम जहाँ भी रहें, वह वृन्दावन बन जाए। इसके लिए जो कुछ भी घटित होना है, वह हमारे भीतर घटित होना है न कि बाहर। हमारा मन इतना दृढ़ सङ्कल्पित होना चाहिए कि हम अच्छा सुनें, देखें, खाएँ और व्यवहार करें। तभी सदैव मधुर वाणी हमारे मुख से निकलेगी।
एक बार रामकृष्ण परमहंस जी के पास उनका एक शिष्य आया और कहने लगा कि मुझे मदिरापान की बुरी आदत हो गई है। कृपया इस आदत से मुझे छुड़ाने की कृपा करें। इस पर रामकृष्ण परमहंस जी ने पास के एक पेड़ को कसकर पकड़ लिया और उस शिष्य से कहा कि अब तुम मुझे इस पेड़ से छुड़ाओ तो शिष्य ने कहा कि आपने इस पेड़ को पकड़ रखा है, उस पेड़ ने आपको नहीं पकड़ा हुआ है। इस पर परमहंस जी ने उसे कहा मैं भी तो यही कह रहा हूँ। तुमने उस आदत को पकड़ रखा है, आदत ने तुम्हें नहीं पकड़ा हुआ है। जिस दिन तुम्हारा मन पक्का हो जाएगा और तुम इस बुरी आदत को छोड़ने के लिए सङ्कल्प कर लोगे, उस दिन तुम इस आदत को छोड़ पाओगे। ठीक उसी प्रकार यदि आप किसी प्राकृतिक चिकित्सा स्थल पर गए हुए हैं तो दस दिन वहाँ रहने की पश्चात् जिस वातावरण और आहार-विहार का अनुकरण आप कर रहे थे। अपने मन को पक्का करके ठीक उसी प्रकार का आचरण यदि आप घर पर करेंगे तो आप निश्चित ही उस प्राकृतिक चिकित्सा स्थल वाले स्थान पर जैसा अनुभव कर रहे थे वैसा ही अनुभव और आचरण करने लगेंगे।

प्रश्नकर्ता :- नीलम गुलाटी दीदी

प्रश्न :- कभी-कभी अपने से बड़ों को भी कटु शब्दों का प्रयोग करना पड़ता है। ऐसी स्थिति में क्या करें?

उत्तर :- कभी-कभी यदि माता-पिता को मधुमेह रोग है और वह मीठा खाने के लिए हठ करते हैं तो उन्हें पूरी जलेबी देने की बजाय जलेबी का एक टुकड़ा देकर, उनकी इस इच्छा का शमन कर देना चाहिए। इच्छाओं का शमन भी अत्यन्त महत्वपूर्ण है। जब सामने वाले का संयम टूटता है तो हमारे द्वारा भी वाणी के तीर न चाहते हुए भी छूट ही जाते हैं। ऐसी स्थिति में प्रतिदिन रात्रि को एक बार मन में सूची बना लेनी चाहिए कि हमसे आज दिन भर में कितनी बार ऐसा हुआ और भगवान से क्षमा माँग कर उनको अपना सारथी बना लेना चाहिए। उनसे प्रार्थना करनी चाहिए कि कल मुझसे इस प्रकार की भूल न हो मुझे सम्भाल लेना। प्रातः काल बड़ों को प्रणाम कर अपने किए की क्षमा माँग लेना। यह प्रणाम बड़ा ही अद्भुत होता है, उसमें बहुत ताकत

होती है और हमारे बड़े हमारी त्रुटियों को क्षमा कर देते हैं।

प्रश्नकर्ता :- गायत्री दीदी

प्रश्न :- वर्तमान समय में क्षत्राणियों का क्या कार्य है?

उत्तर :- आज भी क्षत्रिय रण क्षेत्र में जाते हैं तो उनके पीछे से उनके सारे उत्तरदायित्व क्षत्राणियां ही निभाती हैं। आजकल तो सेना में महिलाओं का प्रवेश होने लगा है तो वह रण क्षेत्र में भी भागीदार बन गई हैं।

प्रश्नकर्ता :- बजरंङ्ग भैया

प्रश्न :- यदि बड़े भाई ने सम्पत्ति के बँटवारे में छोटे भाई से अधिक हिस्सा ले लिया है, तो क्या उसका कोई कार्मिक खाता बनता है?

उत्तर :- बिल्कुल बड़े भाई का कार्मिक खाता बनता है। उसने अनीति पूर्वक अपने छोटा भाई का हिस्सा छीन लिया है। छोटे भाई ने सामाजिक मर्यादा के रहते व्यवहार बनाए रखने के लिए हस्ताक्षर किए हैं तो यह उसका बड़प्पन है।

इस सम्बन्ध में रामधारी सिंह दिनकर जी की एक कविता "कृष्ण की चेतावनी" बहुत अद्भुत है।

कृष्ण की चेतावनी
रामधारी सिंह "दिनकर"

वर्षों तक वन में घूम-घूम,
बाधा-विघ्नों को चूम-चूम,
सह धूप-घाम, पानी-पत्थर,
पाण्डव आये कुछ और निखर।
सौभाग्य न सब दिन सोता है,
देखें, आगे क्या होता है।

मैत्री की राह बताने को,
सबको सुमार्ग पर लाने को,
दुर्योधन को समझाने को,
भीषण विध्वंस बचाने को,
भगवान् हस्तिनापुर आये,
पाण्डव का संदेशा लाये।

‘दो न्याय अगर तो आधा दो,
पर, इसमें भी यदि बाधा हो,
तो दे दो केवल पाँच ग्राम,
रक्खो अपनी धरती तमाम।
हम वहीं खुशी से खायेंगे,
परिजन पर असि न उठायेंगे!

दुर्योधन वह भी दे ना सका,
आशीष समाज की ले न सका,

उलटे, हरि को बाँधने चला,
जो था असाध्य, साधने चला।
जब नाश मनुज पर छाता है,
पहले विवेक मर जाता है।

हरि ने भीषण हुंकार किया,
अपना स्वरूप-विस्तार किया,
डगमग-डगमग दिग्गज डोले,
भगवान् कुपित होकर बोले-
'जंजीर बढ़ा कर साध मुझे,
हाँ, हाँ दुर्योधन! बाँध मुझे।

यह देख, गगन मुझमें लय है,
यह देख, पवन मुझमें लय है,
मुझमें विलीन झंकार सकल,
मुझमें लय है संसार सकल।
अमरत्व फूलता है मुझमें,
संहार झूलता है मुझमें।

'उदयाचल मेरा दीप्त भाल,
भूमण्डल वक्षस्थल विशाल,
भुज परिधि-बन्ध को घेरे हैं,
मैनाक-मेरु पग मेरे हैं।
दिपते जो ग्रह नक्षत्र निकर,
सब हैं मेरे मुख के अन्दर।

'दृग हों तो दृश्य अकाण्ड देख,
मुझमें सारा ब्रह्माण्ड देख,
चर-अचर जीव, जग, क्षर-अक्षर,
नश्वर मनुष्य सुरजाति अमर।
शत कोटि सूर्य, शत कोटि चन्द्र,
शत कोटि सरित, सर, सिन्धु मन्द्र।

'शत कोटि विष्णु, ब्रह्मा, महेश,
शत कोटि जिष्णु, जलपति, धनेश,
शत कोटि रुद्र, शत कोटि काल,
शत कोटि दण्डधर लोकपाल।
जञ्जीर बढ़ाकर साध इन्हें,
हाँ-हाँ दुर्योधन! बाँध इन्हें।

'भूलोक, अतल, पाताल देख,
गत और अनागत काल देख,
यह देख जगत का आदि-सृजन,
यह देख, महाभारत का रण,
मृतकों से पटी हुई भू है,

पहचान, इसमें कहाँ तू है।

'अम्बर में कुन्तल-जाल देख,
पद के नीचे पाताल देख,
मुट्ठी में तीनों काल देख,
मेरा स्वरूप विकराल देख।
सब जन्म मुझी से पाते हैं,
फिर लौट मुझी में आते हैं।

'जिह्वा से कढ़ती ज्वाल सघन,
साँसों में पाता जन्म पवन,
पड़ जाती मेरी दृष्टि जिधर,
हँसने लगती है सृष्टि उधर!
मैं जभी मूँदता हूँ लोचन,
छा जाता चारों ओर मरण।

'बाँधने मुझे तो आया है,
जंजीर बड़ी क्या लाया है?
यदि मुझे बाँधना चाहे मन,
पहले तो बाँध अनन्त गगन।
सूने को साध न सकता है,
वह मुझे बाँध कब सकता है?

'हित-वचन नहीं तूने माना,
मैत्री का मूल्य न पहचाना,
तो ले, मैं भी अब जाता हूँ,
अन्तिम संकल्प सुनाता हूँ।
याचना नहीं, अब रण होगा,
जीवन-जय या कि मरण होगा।

'टकरायेंगे नक्षत्र-निकर,
बरसेगी भू पर वह्नि प्रखर,
फण शेषनाग का डोलेगा,
विकराल काल मुँह खोलेगा।
दुर्योधन! रण ऐसा होगा।
फिर कभी नहीं जैसा होगा।

'भाई पर भाई टूटेंगे,
विष-बाण बूँद-से छूटेंगे,
वायस-श्रृगाल सुख लूटेंगे,
सौभाग्य मनुज के फूटेंगे।
आखिर तू भूशायी होगा,
हिंसा का पर, दायी होगा।'

थी सभा सन्न, सब लोग डरे,

चुप थे या थे बेहोश पड़े।
केवल दो नर ना अघाते थे,
धृतराष्ट्र-विदुर सुख पाते थे।
कर जोड़ खड़े प्रमुदित,
निर्भय, दोनों पुकारते थे 'जय-जय'!

कविता का लिंक:-
https://youtu.be/cngYNxL6sbk?si=ewO9ujcB37Ix7jTa

हमें विश्वास है कि आपको विवेचन की रचना पढ़कर अच्छा लगा होगा। कृपया नीचे दिए लिंक का उपयोग करके हमें अपनी प्रतिक्रिया दीजिए।

https://vivechan.learngeeta.com/feedback/

विवेचन-सार आपने पढ़ा, धन्यवाद!
हम सब गीता सेवी, अनन्य भाव से प्रयास करते हैं कि विवेचन के अंश आप तक शुद्ध वर्तनी में पहुंचे। इसके बाद भी वर्तनी या भाषा संबंधी किन्हीं त्रुटियों के लिए हम क्षमा प्रार्थी हैं।

जय श्री कृष्ण !
संकलन: गीता परिवार - रचनात्मक लेखन विभाग

हर घर गीता, हर कर गीता!
आइये हम सब गीता परिवार के इस ध्येय से जुड़ जायें, और अपने इष्ट-मित्र -परिचितों को गीता कक्षा का उपहार दें।

https://gift.learngeeta.com/

गीता परिवार ने एक नवीन पहल की है। अब आप पूर्व में सञ्चालित हुए सभी विवेचनों कि यूट्यूब विडियो एवं पीडीऍफ़ को देख एवं पढ़ सकते हैं। कृपया नीचे दी गयी लिंक का उपयोग करे।

https://vivechan.learngeeta.com/

|| गीता पढ़े, पढ़ायें, जीवन में लाये ||
||ॐ श्रीकृष्णार्पणमस्तु ||